रजि. नं. पी.बी./जे.एल-/0011/2012-14 RNI No. 26281/74

ओ३म्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख साप्ताहिक पत्र

वर्ष–73, अंक : 29, 13–16 अक्तूबर 2016 तदनुसार 1 कार्तिक सम्वत् 2073 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

धार्मिक जन का प्रभाव

-ले० स्वामी वेदानन्द (दयानन्द) तीर्थ

न पिशाचैः सं शक्नोमि न स्तेनैर्न वनर्गुभिः।
पिशाचास्तस्मान्नश्यन्ति यमहं ग्राममाविशे।।
यं ग्राममाविशत इदमुग्रं सहो मम।
पिशाचास्तस्मान्नश्यन्ति न पापमुप जानते।।

-अथर्व० ४।३६।७, ८

शब्दार्थ–मैं **न** = न **पिशाचैः** = पिशाचों के साथ **सम्** = एक होकर **शक्नोमि** = कार्य कर सकता हूँ, **न** = न ही, **स्तेनैः** = चोरों के साथ और **न** = न ही **वनर्गुभिः** = डाकुओं के साथ **यम्** = जिस **ग्रामम्** = ग्राम या समुदाय में **अहम्** = मैं **आविशे** = घुसता हूँ **पिशाचाः** = पिशाच **तस्मात्** = उससे **नश्यन्ति** = भाग जाते हैं। **यम्** = जिस **ग्रामम्** = ग्राम या समुदाय में **मम** = मेरा **इदम्** = यह **उग्रम्** = उग्र **सहः** = सह, बल **आविशते** = घुसता है, **पिशाचाः** = पिशाच **तस्मात्** = उससे **नश्यन्ति** = नष्ट हो जाते हैं, भाग जाते हैं, अर्थात् **पापम्** = पाप को **उप+न+जानते** = समीप से भी नहीं जानते।

व्याख्या–धार्मिक सदाचारी का प्रभाव इन मन्त्रों में वर्णित है। धार्मिक जन पिशाचों, चोरों–डाकुओं के साथ मेल नहीं रख सकता। 'पिशाच' का अर्थ समझ लिया जाए तो इस मन्त्र का भाव हृदयङ्गम करना कठिन नहीं होगा। वेद में लिखा है–

आरादरातिं निर्ऋतिं परो ग्राहिं क्रव्यादः पिशाचान्।
रक्षो यत्सर्वं दुर्भूतं तत्तम इवाप हन्मसि।। **-अथर्व० ८।२।१२**

अर्थात् हम कंजूसी, पाप अथवा असत्य, पकड़ रखने वाला रोग, कच्चा मांस खाने वाले पिशाचों और राक्षसों को, जो कुछ दुर्भूत = दुर्गुण है, उसको अन्धकार की भाँति दूर भगाते हैं।

इससे प्रतीत होता है कि मांसाहारी को पिशाच कहते हैं। जो प्रजा का रक्त–मांस चूस जाए, वह पिशाच है। पिशाच के साथ और दुर्भूत= दुर्गुण गिनाये हैं, उन पर ध्यान देने से यह बात स्पष्ट हो जाती है। अराति=कंजूसी। पास में कोई भूख–प्यास से तड़प रहा है, कंजूस को उसकी पीड़ा से तनिक भी क्लेश नहीं होता। कंजूस दूसरों को देने की बात दूर रही, स्वयं भी नहीं खाता, अतएव सदा दुशवस्था में रहता है। निर्ऋति पाप तथा असत्य का नाम है। ग्राहि ऐसे शारीरिक रोग का नाम है, जो जाने का नाम नहीं लेता, किन्तु मनुष्य के शरीर को सुखाये डालता है। इनके साथ परिपठित होने से पिशाच किसी लौकिक पदार्थ का नाम है। पिशाच के विशेषण 'क्रव्याद्' ने इस बात को और भी स्पष्ट कर दिया है।

पिशाचों के साथ चोरों और डाकुओं की चर्चा आने से भी पिशाच उनके भाई–बन्धु हैं। तनिक प्रकृत मन्त्र की रचना पर ध्यान दीजिए। पहले पिशाचों का नाम लिया गया है, फिर चोरों का और फिर डाकुओं का। वनर्गु=डाकू, जङ्गल के वासी हैं, अर्थात् दूरस्थ हैं। चोर हैं तो दूरस्थ, किन्तु हैं नगर या ग्राम के वासी, अर्थात् उनकी अपेक्षा समीपतर। पिशाच उनकी अपेक्षा और भी समीप रहने वाले होने चाहिएँ। ये वे लोग हैं, जो प्रजा में रहते हुए प्रजा का मांस खाते रहते हैं, विविध प्रकार से प्रजा को सताते रहते हैं। धार्मिक मनुष्य इनके साथ मिलकर नहीं रह सकता। हाँ, जहाँ वह पहुँचता है, वहाँ से ऐसे लोग भाग जाते हैं। भाग जाने के दो अर्थ हो सकते हैं–१. सचमुच दूसरे स्थान को चले जाना, और २. अपने दुर्भूत = दुर्व्यवहार को भगा देना। इन मन्त्रों में भागने का अर्थ दूसरा है, क्योंकि दूसरे मन्त्र में लिखा है–

पिशाचास्तस्मान्नश्यन्ति न पापमुप जानते।।

अर्थात् पिशाच वहाँ से भाग जाते हैं, वे पाप को नहीं जानते। पाप को न जानना पाप–त्याग है। धर्माचरण से ऐसा तेजोबल मिलता है जिससे अपने भीतर बैठे दुर्भूतरूप पिशाच भाग जाते हैं और साथ ही दूसरों के भी, अतः मनुष्य को धर्माचरण के द्वारा उग्र धर्मबल लाभ करने का यत्न करना चाहिए।

(स्वाध्याय संदोह से साभार)

परोपकारिणी के प्रधान डॉ. धर्मवीर का देहान्त
आर्य समाज की अपूरणीय क्षति

आर्य जगत् के उच्चकोटि के विद्वान्, महर्षि दयानन्द की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा के प्रधान तथा परोपकारी पत्रिका के संपादक डॉ. धर्मवीर जी का देहान्त सम्पूर्ण आर्य जगत् के लिए अपूरणीय क्षति है। डॉ. धर्मवीर जी वैदिक सिद्धान्तों के प्रति निष्ठा रखने वाले उच्चकोटि के वैदिक विद्वान् थे। परोपकारी पत्रिका में अपने सम्पादकीय लेखों के द्वारा तथा अपने व्याख्यानों के माध्यम से निरन्तर आर्य जगत की सेवा करते हुए सम्पूर्ण जीवन व्यतीत किया। डॉ. धर्मवीर जी महर्षि दयानन्द के सच्चे सिपाही थे। ऐसे महान् व्यक्तित्व का अकस्मात् इस संसार से जाना केवल परिवार की ही नहीं अपितु सम्पूर्ण आर्य जगत् की हानि है जिसकी भरपाई कर पाना बहुत ही मुश्किल है। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब एवं पंजाब की समस्त आर्य समाजें डॉ. धर्मवीर जी के निधन पर गहरा दुःख व्यक्त करती है। आर्य जगत् उनकी आर्य जगत् के लिए दी गई सेवाओं का हमेशा ऋणी रहेगा। परमपिता परमात्मा इस पवित्र आत्मा को शान्ति एवं सद्गति प्रदान करे तथा परिवार को इस दारूण दुःख को सहन करने की शक्ति व धैर्य प्रदान करें एवं आर्य जगत् को उनके पदचिह्नों पर चलने के लिए प्रेरित करे।

प्रेम भारद्वाज महामन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब

सच्चा सुख प्राप्त करने के साधन

-ले० प्रेमकांत बतरा सेवानिवृत्त चीफ जनरल मैनेजर (सेफ्टी) ईस्टर्न कोल फील्ड लिमिटेड, सेक्टोरिया, पश्चिम बंगाल

गीता में तीन प्रकार के सुखों का वर्णन हैं। जो निम्नलिखित रूप में स्पष्ट हैं-

सत्वं सुखे संजयति रज: कर्मणि भारत।

ज्ञानमावृत्य तु तम: प्रमादे संजयत्युत। (अध्याय 14 श्लोक 9)

तामसी सुख-जो सुख भोगकाल में तथा परिणाम में आत्मा को मोहित करे, जो निद्रा आलस्य प्रमाद से उत्पन्न हो उसे तामस सुख कहते हैं। यही सुख अंतत: नानाविध दु:खों का सृजन करता है।

राजसी सुख-विषय एवं इंद्रियों के सहयोग से उत्पन्न पर परिणाम विष युक्त होता है।

जीवन को सुखमय बनाने के लिए शास्त्रोनुमोदित कर्म करने हेतु निर्देश है-

सात्विक सुख-सात्विक सुख जो सत्व गुण संयोजन से उत्पन्न होता है। सत्व गुणों का समझना आवश्यक है।

य:, शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारत:, न स सिद्धिमवाप्नोति न सुख न परां गतिम्।

गीता 16.23

अर्थात् जो व्यक्ति शास्त्राविधि त्याग कर अपनी इच्छा से मनमाना आचरण करता है, वह कभी सिद्धि, सुख को प्राप्त नहीं होता।

यह ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमें क्या करना चाहिए और क्या त्यागना चाहिए इसको समझना आवश्यक है। गीता में कहा गया है-

'तस्मात् शास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्य व्यवस्थितौ।

ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि।'

(अध्याय 16 श्लोक 24)

अर्थात् कर्त्तव्य अकर्त्तव्य की अवस्था में शास्त्र ही प्रमाण है।

ब्रह्मयज्ञ अर्थात् वैदिक संध्या से यह स्पष्ट है कि ईश्वर ने प्राणिमात्र के सुख के लिए हर दिशा से व्यवस्था की है। इस संबंध में मंत्र निम्नलिखित है, आइये इन्हें समझने का प्रयत्न करें।

(क) ओ३म् प्राची दिगग्निरधि-पतिरसितो रक्षितादित्या इषव:। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्म:।१।

(ख) ओ३म् दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषव:। तेभ्यो.... दध्म:।

(ग) ओ३म् प्रतीची दिग्वरुणो-ऽधिपति: पृदाकू रक्षितान्नभिषव:। तेभ्यो... दध्म:।

(घ) ओ३म् उदीची दिक् सोमोऽधिपति: स्वजो रक्षिता-शनिरिषव:। तेभ्यो..... दध्म:।

(च) ओ३म् ध्रुवा दिग् विष्णुरधिपति: कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषव:। तेभ्यो..... दध्म:।

(छ) ओ३म् ऊर्ध्वा दिग् बृहस्पतिरधिपति: श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषव:। तेभ्यो.... दध्म:।

पूर्व दिशा हमारी शक्ति का प्रतीक है। इसमें सूर्य की किरणों द्वारा जग पर प्रकाश होता है एवं पौधे पैदा होते, बढ़ते, फल देते हैं। प्रात: काल की सूर्यकिरणें रोग विनाशक भी हैं। हर तरह से हमारा जीवन सुखी बनाती हैं। इसके लिए ईश्वर को नमस्कार तथा उपासना नियमित करें। जो हमसे द्वेष करें या हम जिनसे क्लेश करे, इसकी न्याय ईश्वर व्यवस्था पर छोड़ना होगा, नहीं तो हम सदा चिन्तित और दु:खी रहेंगे।

दक्षिण हाथ से हम सब कार्य करते है। दक्षिण दिशा से ही यह शक्ति प्राप्त होती है। इसी से योग्यता शक्ति प्राप्त कर हम सुखी हो सकते हैं, पर इस शक्ति को पवित्र मान कर कल्याण में लगाना होगा।

पश्चिम दिशा विश्राम की द्योतक है, हमें दिनभर परिश्रम करने पर सायं संधि समय उचित यज्ञ, ईश्वर उपासना के बाद छ: घंटे से नौ घंटे, आयु अनुसार नींद लेना आवश्यक है। बचपन में बच्चों की नींद ज्यादा होनी चाहिए। हमारे शरीर में करोड़ों कण (सैल) हैं जिन से शरीर निर्माण होता है। हर रोज कुछ ही कण बनते तथा कुछ मरते हैं। विश्राम के अभाव में यह कार्य व्यवस्थित रूप से नहीं हो पाता, जिससे शरीर रोगयुक्त होता है। सच्चे सुख के लिए विश्राम आवश्यक है।

बिजली के द्वारा हमारे शरीर में रुधिर की गति से प्राण की रक्षा होती है। हमें बिजली का प्रयोग तथा भौतिक अग्नि का प्रयोग जानना चाहिए, उससे लाभ उठाना चाहिए। सूर्य में भी उष्णता है, उसका भी उपयोग करें। घर में अग्नि से मच्छर आदि का प्रकोप कम होता है, स्वच्छता और शुद्ध पानी भी सहायक होता है, इससे हम सुखी रहते हैं।

ईश्वर नीचे की दिशा से सब वृक्षों लताओं को ऊपर विकसित करता है जिससे प्राण की रक्षा होती है। सुखमय जीवन के लिए वृक्षों को जितना विकसित करेंगे उतना सुखी रहेंगे। पेड़ों की संख्या पूरी दुनिया में 46 प्रतिशत कम हो गयी है जिसके चलते वातावरण में बदलाव इत्यादि का होना दु:ख के कारण है।

ईश्वर मेघ बरसाकर संसार में जल और शीतलता देते हैं। कृषि होती है, पीने का पानी मिलता है, पक्षियों की चहचहाहट सुनने को मिलती है। हमें अपना स्वभाव शीतल रखने से सुख मिलेगा। शुद्ध पानी शरीर को स्वस्थ रखता है और गति देता है।

जब परमेश्वर ने हमारे सुख के लिए सब ओर से प्रबन्ध किया है तो हम वैदिक शिक्षा के आधार पर धर्म के लक्षण समझना, हर आश्रम में अपने कर्तव्य समझना, यम नियम इत्यादि को समझ कर पालन करना, सत्य की पहचान कर उसका पालन करना, सृष्टिरचना के नियमित संचालन के अनुसार अपना जीवन संचालित करना, क्या अपनाना, क्या त्यागना इनका ज्ञान प्राप्त करना, इनसे ही हमें सच्चा सुख मिलता है।

ज्ञान की प्राप्ति के लिए निम्न-लिखित को जीवन में अपनाना आवश्यक है-

(क) योगाभ्यास के आठ अंग समझकर पालन करने से ज्ञान एवं सुख मिलता है।

(ख) हमें स्वभाव से दैवी पुरुष बनना होगा-हमें दैवी पुरुष बनने के लिए निम्नलिखित बातों को अपनाना होगा-

भय का अभाव, अन्त:करण निर्मल, ध्यानयोग में दृढ़ स्थिति, सात्विक ज्ञान, इन्द्रियों का दमन, नियमित ईश्वर पूजा, अग्निहोत्र आदि उत्तम कर्म, वेद शास्त्रों का पठन, कीर्तन, स्वधर्मपालन में जो कष्ट हो उसे सहना, सरलता, मन वाणी शरीर से किसी को काट न देना, यथार्थ प्रिय भाषण, अपकार करने को पर भी क्रोध नहीं, कर्तापन की भावना का त्याग, चित्त की चंचलता का अभाव, किसी की निंदा नहीं, सब प्राणियों पर दया, आसक्ति नहीं, लोक शास्त्र विरुद्ध आचरण में लज्जा, शरीर में तेज, सब समय कोमल, क्षमा, धैर्य, शुद्धि, आवश्यकतानुसार न्याय परिश्रम से धन उत्पत्ति, दंभ रहित जीवन, क्रूरता रहितस्वभाव, सीमित व्यवहारिक अकांक्षाएं, इन सबका पालन आवश्यक हैं।

(ग) आसुरी प्रवृत्तियों का त्याग करने से सुख मिलता है, आसुरी प्रवृत्तियां निम्नलिखित है-धन, कुटुम्ब, अपनी श्रेष्ठता का अहंकार, दान का अभिमान, पाखंड़, विषय भोग में आसक्ति, दूसरे की निंदा, क्रूरकर्मी, अपनानी, ईश्वर की सत्ता को न मानना, स्त्री पुरुष संयोग से जग रचित मानना, भ्रष्ट, बुद्धि मंद, हर रोज़ नये मनोरथ, शत्रुओं को मारने का अभिमान, मृत्युपर्यन्त असंख्य इच्छाएं एवं चिंताएं, नास्तिकता, धन संग्रह कर उसका उचित उपयोग न करना।

(घ) सुखी जीवन के लिए उत्तम सात्विक आहार आवश्यक है। भोजन के तीन प्रकार हैं-रसयुक्त, मन को प्रिय, ताजा, आयु बुद्धि, बल आरोग्य बढ़ाए वो सात्विक भोजन है। जो चिन्ता बढ़ाए वो राजसी। अधपका, रसरहित, दुर्गन्ध, युक्त, बासी, अपवित्र, स्वादरहित व तामसी। सदा सात्विक भोजना करना चाहिए।

(च) सुखी जीवन के लिए धर्म से दस लक्षणों का ज्ञान एवं पालन करना आवश्यक है।

धर्म के दस लक्षण-

1. धैर्य 2. क्षमा, 3. दम-मन सदा धर्म में प्रवृत्त 4. अस्तेय-चोरी की इच्छा नहीं 5. शौच 6. इन्द्रिय

(शेष पृष्ठ 7 पर)

सम्पादकीय.....

सभी आर्य समाजें महर्षि दयानन्द निर्वाण दिवस अवश्य मनाए

पर्व भारतीय संस्कृति के प्राण एवं आधारस्तम्भ हैं। भारतीय संस्कृति में से यदि पर्वों को निकाल दिया जाए तो यह निष्प्राण एवं मुर्दा हो जाएगी। हमारी संस्कृति में समय-समय पर आने वाले पर्व हमें एकजुट होने का सन्देश देते हैं। पर्व हमें आपस में समाज के साथ जोड़ कर रखते हैं। ऐसे ही पर्वों की श्रृंखला में दीपावली का पर्व आता है। दीपावली के पर्व को लेकर लोगों में बहुत उत्साह होता है। महीनों पहले लोग इस पर्व की तैयारियां शुरू कर देते हैं। आर्य समाज के अनुयायियों के लिए इस पर्व का महत्व और भी बढ़ जाता है क्योंकि इसी दिन वेदोद्धारक मनीषी महर्षि दयानन्द सरस्वती जी का देहावसान हुआ था। इसलिए इस वर्ष 30 अक्तूबर 2016 को दीपावली पर्व एवं महर्षि दयानन्द निर्वाण दिवस आ रहे हैं। आर्य जगत् के लिए ये दोनों किसी त्योहार से कम नहीं हैं। दीपावली का पर्व जिसे शारदीय नवस्येष्टि के रूप में मनाया जाता था। लोग अपने घरों में नई फसल के आने पर खुशियां मनाते थे और उसे भगवान का प्रसाद समझकर पहले यज्ञ करके उसकी आहुति देते थे। इसीलिए इस पर्व को शारदीय नवसस्येष्टि के रूप में मनाया जाता था। समय के साथ-साथ परिवर्तन हुआ और हम पर्व के शुद्ध स्वरूप को भूलकर केवल दीपक जलाने तक सीमित रह गए।

दीपावली की इस रात्रि का महत्त्व एक महाघटना ने और भी बढ़ा दिया। इसी रात्रि को वेदों का उद्धार करने वाले, आर्य समाज के प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द ने अपने नश्वर शरीर का त्याग करके इहलोक से प्रयाण किया था। महापुरूषों का देहावसान साधारण मनुष्यों की मृत्यु के समान शोकजनक नहीं होता अपितु उनका तो प्रादुर्भाव और महाप्रयाण दोनों ही लोककल्याण और आनन्द प्रदान करने के लिए होते हैं। वे परोपकार के लिए प्राणों को अर्पण करते हैं। संसार के सुख के लिए अपने प्राणों की बलि देते हैं। इसलिए जनता उनके बलिदान पर उनकी कीर्ति का कीर्तन और गुणगान करके एक प्रकार का आनन्द अनुभव करती है। उनका बलिदान स्वयं जनता के लिए परोपकारार्थ का उत्तम आदर्श स्थापित करके जनता को उसका अनुसरण करने के लिए प्रेरित करता है। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने आर्य समाज की स्थापना करके समस्त मानव जाति का जो उपकार किया है, महर्षि के उस ऋण को नहीं चुकाया जा सकता। महर्षि दयानन्द ने धार्मिक क्षेत्र में पाखण्ड़, मूर्तिपूजा, अन्धविश्वास के ऊपर जमकर प्रहार किया। राजनैतिक क्षेत्र में उन्होंने स्वराज्य प्राप्ति पर जोर दिया। सत्यार्थ प्रकाश में महर्षि दयानन्द जी सरस्वती जी लिखते हैं कि अच्छे से अच्छा स्वदेशी राज्य बुरे से बुरे विदेशी राज्य की बराबरी भी नहीं कर सकता। सामाजिक क्षेत्र में उन्होंने नारी जाति के उद्धार,विधवाओं की दुर्दशा को सुधारने और बाल विवाह जैसी कुरीतियों को दूर करने पर बल दिया। इसलिए हमारा कर्त्तव्य बनता है कि हम भी महर्षि के ऋण से उऋण होने का प्रयास करें।

आर्य समाज के नियम बनाते समय महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने उनके नियमों में ही आर्य समाज का उद्देश्य निर्धारित किया है। उस उद्देश्य को पूरा करने के लिए संगठित होने की आवश्यकता है। उन्होंने अपने राष्ट्र का नहीं, आर्य समाज का नहीं अपितु संसार का उपकार करना आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य बताया ताकि हम अपने उद्देश्य से भटक न जाएं। महर्षि दयानन्द के निर्वाण दिवस पर हमारा लक्ष्य होना चाहिए कि हम लोगों को आर्य समाज के बारे में जानकारी दें। आर्य समाज के बारे में आम जनता में जो भ्रान्तियां फैल चुकी हैं, उन्हें दूर करने के लिए उन्हें आर्य समाज के सिद्धान्तों से अवगत कराएं। आर्य समाज की स्थापना के पीछे महर्षि दयानन्द जी का यही उद्देश्य था कि समाज में धर्म के नाम पर जो आडम्बर दिखाई दे रहा है, मूर्ति पूजा के कारण जो अन्धविश्वास फैल रहा है, सम्प्रदायवाद के कारण जो लड़ाई झगड़े हो रहे हैं, उन्हें दूर किया जा सके। सत्य सनातन वैदिक धर्म को अपनाकर सभी लोग संगठित होकर विदेशियों की दासता से मुक्त हों। महर्षि दयानन्द किसी नए पन्थ की मत की स्थापना नहीं करना चाहते थे। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश में लिखते हैं कि- मैं अपना मन्तव्य उसी को मानता हूं जो तीन काल में सबको एक सा मानने योग्य है। मेरा कोई नवीन कल्पना वा मतमतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है किन्तु जो सत्य है उसको मानना, मनवाना और जो असत्य है उसको छोड़ना और छुड़वाना मुझ को अभीष्ट है। यदि मैं पक्षपात करता तो आर्य्यावर्त्त में प्रचरित मतों में से किसी एक मत का आग्रही होता किन्तु जो-जो आर्य्यावर्त्त वा अन्य देशों में अधर्मयुक्त चाल चलन है उस का स्वीकार और जो धर्मयुक्त बातें हैं उन का त्याग नहीं करता, न करना चाहता हूं क्योंकि ऐसा करना मनुष्य धर्म से बहि: है।

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब से सम्बन्धित सभी आर्य समाजों तथा शिक्षण संस्था के अधिकारियों से निवेदन है कि वे महर्षि के निर्वाण दिवस को समारोहपूर्वक मनाएं। अपनी- अपनी आर्य समाजों एवं शिक्षण संस्थाओं में कार्यक्रम का आयोजन करके लोगों को वेदों के साथ जोड़ने का प्रयास करें। महर्षि दयानन्दसरस्वती जी द्वारा लिखित वैदिक साहित्य एवं अन्य आर्य विद्वानों का वैदिक साहित्य इस अवसर पर बाँटे। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब वेद प्रचार के कार्य को आगे बढ़ाने के उद्देश्य से ही वैदिक साहित्य आधे मूल्य पर देती है। वैदिक साहित्य को पढ़ने से ही वेदों का एवं महर्षि दयानन्द के सिद्धान्तों का प्रचार एवं प्रसार होगा। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब सदैव इस कार्य के लिए प्रयासरत है और वेद प्रचार के कार्य में आपका पूर्ण सहयोग करेगी। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने हजारों की संख्या में बाल सत्यार्थ प्रकाश छपवा कर रखे हुए हैं जिसे बच्चों को बाँट कर वैदिक सिद्धान्तों का अंकुर पैदा किया जा सके। सभी शिक्षण संस्थाओं के अधिकारी प्रयास करें कि बच्चों को वैदिक सिद्धान्तों की जानकारी मिले। ऐसे पवित्र विचारों के उद्घोषक, तथा प्राणिमात्र का हित चाहने वाले, सारे संसार का भला चाहने वाले, वेदों के उद्धारक महर्षि दयानन्द जी का निर्वाण दिवस मनाते हुए हमारा लक्ष्य उनके सिद्धान्तों का प्रचार- प्रसार होना चाहिए। महर्षि दयानन्द निर्वाण दिवस पर हम उनके जीवन से शिक्षा लेकर वेद प्रचार के कार्यों को आगे बढ़ाएं।

प्रेम भारद्वाज, संपादक एवं सभा महामन्त्री

निर्वाणोत्सव मनाया जा रहा है

आर्य समाज मेन बाजार दीनानगर में महर्षि दयानन्द सरस्वती एवं स्वामी सर्वानन्द सरस्वती का निर्वाणोत्सव दिनांक 25 अक्तूबर 2016 से 30 अक्तूबर 2016 तक मनाया जा रहा है। इस कार्यक्रम में बहुत से विद्वान् ,सन्यासी, भजनोपदेशक पधार रहे हैं। आप सभी महानुभावों से प्रार्थना है कि इस कार्यक्रम में पधार पर कार्यक्रम की शोभा को बढ़ाएं एवं आए हुए विद्वानों के विचार सुनकर धर्म लाभ प्राप्त करें। **रमेश महाजन मन्त्री आर्य समाज दीनानगर**

जीवन मुक्त बनें

-ले० अविनाश चन्द्र 122, सैक्टर 12ए, पंचकूला

मनुष्य दु:खों से छुटना चाहता है और सदा सुख की अभिलाषा करता है। आत्मानुकूल बातें सुख और आत्मा के प्रतिकूल दु:ख कहलाती हैं। प्रत्येक मनुष्य जो कुछ कार्य करता है वह सुख की प्राप्ति और दु:ख से छूटने के लिए ही करता है। दु:ख और सुख शारीरिक, मानसिक, आत्मिक होते हैं जो कि बहुधा, पुत्रेषणा, वित्तेषणा या लोकेषणा से संबंधित होते हैं। यह सुख और दु:ख शाश्वत नहीं होते, मनुष्य के कर्मों, सामाजिक व भौगोलिक परिस्थितियों के कारण आते जाते रहते हैं। इसलिए मनुष्य को शाश्वत सुख या आनंद मोक्ष प्राप्ति की लालसा रहती है।

यद्यपि मोक्ष की अवधारणा बुरे कामों से तथा जन्म-मरण के चक्र से छूट कर सुख स्वरूप परमेश्वर को प्राप्त हो के सुख में रहने की है (आर्योद्देश्य रत्नमाला) तथापि मोक्ष तो इस संसार में रहते हुए संसार का तत्त्व ज्ञान और उचित प्रयोग, योगाभ्यास से ही संभव है। इसमें मानव शरीर की भी महत्वपूर्ण भूमिका है क्योंकि ''शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्'' शरीर ही तो धर्म प्राप्त करने का प्रथम साधन है। संसार और शरीर को ही मुक्ति का साधन बनाना अपेक्षित है।

प्रारब्ध, मनुष्य का अपना पुरुषार्थ व सामाजिक वातावरण व व्यवस्था सुख या दु:ख के हेतु होते हैं। प्रारब्ध, सामाजिक वातावरण व व्यवस्था पर मनुष्य का बस नहीं है। पुरुषार्थ मनुष्य के हाथ में है। इसके लिए पुरुषार्थ-चतुष्टय की व्यवस्था शास्त्रों में उपलब्ध है-धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष।

पुरुषार्थ-चतुष्टय के चारों आयाम-धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष मनुष्य के शरीर के चार अवयवों द्वारा ही सिद्ध किए जाते हैं। स्थूल शरीर के पोषण के लिए अर्थ (भौतिक साधनों) की, मन संतुष्टि के लिए काम की, बुद्धि के लिए धर्म की तथा आत्मा की शांति के लिए मोक्ष तक पहुंचने के लिए शरीर को पुष्ट, मन को शांत व स्थिर तथा बुद्धि को तत्व ज्ञान प्राप्त कर शरीर व मन पर नियंत्रण रखने की योग्यता तथा नियंत्रण रख उसे ईश्वरोपासना, परोपकार, सत्संग, सत्य कर्म, सत्य व्यवहार में लगाए रखना आवश्यक है। पुष्ट व स्वस्थ शरीर में सात्विकता होने पर आलस्य प्रमाद नहीं होता, मन की कामनाओं में तामसिकता न होने पर कर्मेन्द्रियां बुद्धि के नियंत्रण में रहकर सद्ज्ञान व सत्कर्मों की ओर प्रेरित होती हैं। बुद्धि में सात्विकता होने पर ज्ञानेन्द्रियां तत्वज्ञान की ओर उन्मुख होती है। इस प्रकार मनुष्य सत्पथ पर चलता हुआ, सत्कर्म करता हुआ आलस्य, मद, मोह, लोभ, क्रोध, त्याग, निर्भय, निरभिमान रहता हुआ मोक्ष पद की ओर अग्रसर होता है। शरीर, मन, बुद्धि व आत्मा की पवित्रता (शुद्धि) के साधन मनुस्मृति में इस प्रकार बताए गए हैं:

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मन: सत्येन शुध्यति।

विद्या तपोभ्यां भूतात्मा बुद्धि-र्ज्ञानेन शुध्यति।

शरीर को स्वस्थ व पुष्ट रखना पहली आवश्यकता है। नियमित ब्रह्मचर्य पालन, योगाभ्यास, आसन प्राणायाम, उचित आहार, निद्रा, पथ्य सेवन से शरीर की आरोग्यता सुनिश्चित करना मनुष्य का पहला कर्तव्य है। आयुर्वेद में कहा गया है-''धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्'' अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-सभी पुरुषार्थों का उत्तम मूल आरोग्य ही है। शरीर को पुष्ट व स्वस्थ रखना बिना संयम व इन्द्रिय निग्रह के संभव नहीं है। कर्मेन्द्रियों का स्वभाव विषयों की ओर भगाने का होता है। इनको नियंत्रण में रखने के लिए शिक्षा, स्वाध्याय, सत्संग, ईश्वरोपासना का विधान किया गया है। स्वस्थ व पुष्ट रखने के लिए उसकी सुरक्षा (ज़हरीले कीड़ों व हिंसक जानवरों से तथा ऋतुओं की विषमता से बीमारी, व्रण, चोट आदि से) भी आवश्यक है। स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन व बुद्धि का विकास होता है। इसी के साथ शरीर के लिए स्वच्छता, शुद्धि, उचित व्यायाम, विश्राम, आहार-विहार भी नियमित रूप से आवश्यक हैं।

स्थूल शरीर के अतिरिक्त सूक्ष्म शरीर के महत्वपूर्ण अवयव हैं-मन और बुद्धि का विकास और परिष्कार उतना ही आवश्यक है जितना स्थूल शरीर का। सत्य, ज्ञान, स्वाध्याय, सत्संग, सूक्ष्म शरीर के लिए आवश्यक हैं। इनका नियमित सेवन अपेक्षित है। सत्य ज्ञान से अविद्या का नाश होता है। मन, बुद्धि तथा शरीर के दोष दूर होते हैं, दुर्गुण, दुर्व्यसन, दु:ख दूर होते हैं। मनुष्य सत्कर्म करता है, सत्पथ पर चलता है। मनुष्य के कर्म की प्रक्रिया इस प्रकार से होती है-

1. मनन, चिन्तन संकल्प, विकल्प, सोच विचार, कल्पना, निर्णय (मन एवं बुद्धि के संसर्ग से) हर्षोल्लास, दु:ख, सुख, भय

2. कार्य

*सर्वाभाविक-आहार, निद्रा, संतानोत्पत्ति, भय से रक्षा।

*निर्णय को कार्यान्वित करना (कर्मेन्द्रियों की सक्रियता)

*अनुभव (ज्ञानेन्द्रियों की सक्रियता)

3. व्यवहार

*पारिवारिक व्यवहार

*सामाजिक व्यवहार

*यम नियमों का पालन

4. ईश्वर स्तुति, प्रार्थना उपासना

*आध्यात्मिक उन्नति, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि।

मनुष्य को शरीर, मन, बुद्धि से करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए इसके लिए योग दर्शन में महर्षि पतंजलि ने बड़ी सुन्दर व्यवस्था यम, नियमों को निर्धारित करके की है। इन यम नियमों का पालन जाति, देश, काल और समय की सीमा में नहीं बंधा है। सभी व्यवस्थाओं में सभी मनुष्यों द्वारा इनका पालन किया जा सकता है। इनको पालन करने से मनुष्य का जीवन महान बनता है और समाज सुखी होता है। पांच यम हैं, जो निर्धारित करते हैं कि मनुष्य के लिए पांच निषेध क्या हैं अर्थात् उसे क्या नहीं करना चाहिए।

1. अहिंसा-शरीर, वाणी तथा मन से सब काल में समस्त प्राणियों के साथ वैर भाव न रखना अपितु प्रेमपूर्वक व्यवहार करना।

2. सत्य-जैसा देखा, सुना, पढ़ा, अनुभव किया, जिसका ज्ञान है, वैसा ही वाणी से बोलना आचरण में लाना अन्यथा नहीं।

3. अस्तेय-किसी अस्तु/अधिकार को स्वामी की स्वीकृति के बिना न तो शरीर से लेना, न लेने के लिए किसी को कहना और न ही मन में लेने की इच्छा करना।

4. ब्रह्मचर्य-मन तथा इन्द्रियों पर संयम कर शारीरिक शक्तियों की हानि न होने देना, सत्य ज्ञान को प्राप्त कर ईश्वर की उपासना करना।

5. अपरिग्रह-हानिकारक और आवश्यकता से अधिक वस्तुओं को जमा न करना, न ही हानिकारक व अनावश्यक विचारों का संग्रह करना। पांच नियम हैं, जो यह निर्धारित करते हैं कि मनुष्य को क्या करना चाहिए-

शौच (शुद्धि)-शरीर, वस्त्र, पात्र, स्थान, खान-पान, धनोपार्जन को पवित्र रखना ब्रह्म शुद्धि है। विद्या, सत्संग, स्वाध्याय, सत्य भाषण, व धर्माचारण से मन, बुद्धि, अन्त:करण को पवित्र करना आंतरिक शुद्धि है।

2. संतोष-अपने पास विद्यमान ज्ञान, बल, धन तथा साधनों से पूर्व पुरुषार्थ करने के पश्चात् जितना भी आनंद प्राप्त हो; उतने से ही संतुष्ट रहना।

3. तप-धर्माचरण, उत्तम कर्तव्य कर्मों को करते हुए भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी, लाभ, हानि, मान, अपमान आदि को प्रसन्नता पूर्वक धैर्य से सहन करना।

4. स्वाध्याय-उत्तम साहित्य को पढ़ना, मनन करना, सत्संग करना, उत्तम चर्चा वार्ता करना, आत्म चिन्तन करना तथा पवित्र मंत्रों का जाप करना।

5. ईश्वरप्रणिधान-शरीर, बुद्धि, बल, विद्या, धन आदि समस्त साधनों को ईश्वर प्रदत्त मान कर उनका प्रयोग करना, मन, वाणी तथा शरीर से ईश्वर प्राप्ति का प्रयत्न करना। सर्वव्यापक, सर्वज्ञ ईश्वर मुझे देख, सुन, जान रहा है यह भावना मन में बनाए रखना ''ईश्वरप्रणिधान'' कहलाता है।

मनुष्य को कर्म करते समय ईश्वर की आज्ञा पालन में समर्पित होना चाहिए तभी सुख, संतोष, आनंद प्राप्त होता है और मोक्ष का मार्ग प्रशस्त होता है। ''यस्य छाया अमृतं यस्य मृत्यु: कस्मै देवाय हविषा विधेम'' अर्थात् ईश्वर की आज्ञा पालन करना (उसकी भक्ति है) ही मोक्ष सुखदायक है और

(शेष पृष्ठ 6 पर)

'वेदों का सार्वभौमिक महत्व एवं प्रभाव'

-ले० मनमोहन कुमार आर्य, पताः 196 चुक्खूवाला-2 देहरादून-248001

आज का संसार विज्ञान की उपलब्धियों से रचा व बना प्रतीत होता है जिसमें मध्यकाल व उसके बाद उत्पन्न अनेक मत-मतान्तरों सहित ऋषि दयानन्द द्वारा प्रचारित ईश्वरीय ज्ञान वेद पर आधारित वैदिक धर्म भी प्रचलित हैं। वेदों के बाद विश्व का सबसे प्राचीन मत पारसी मत है जिसकी धर्म पुस्तक का नाम जन्दावस्ता है। ईरान में यह मत तीन से चार हज़ार वर्ष पूर्व अस्तित्व में आया और वहां प्रचलित होकर विश्व के अनेक भागों में फैला। भारत में इससे पूर्व वैदिक धर्म प्रचलित था। वैदिक धर्म वेदों की शिक्षाओं, मान्यताओं और सिद्धान्तों पर आधारित है। परीक्षा करने पर वेदों की सभी शिक्षायें, मान्यतायें व सिद्धान्त आज के वैज्ञानिक युग में भी न केवल पूर्णतः सत्य हैं अपितु सभी प्रचलित मत-मतान्तरों की तुलना में संसार के लोगों के लिए सबसे अधिक उपादेय एवं सर्वात्रिक उन्नति के योग्य हैं। वेद क्या हैं ? वेद ज्ञान को कहते हैं। वेद चार हैं ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद। यह वेद वह ज्ञान है जो सृष्टि के आरम्भ में, सृष्टि वा ब्रह्माण्ड की रचना सम्पन्न हो जाने के बाद, मानव की उत्पति होने पर सृष्टि के रचयिता व कर्ता सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सच्चिदानन्दस्वरूप ईश्वर के द्वारा चार ऋषियों अग्नि. वायु, आदित्य व अंगिरा के हृदय में प्रेरणा द्वारा प्रदान किया गया था। ईश्वर सर्वज्ञ अर्थात् ज्ञानस्वरूप व समस्त विद्याओं का भण्डार है, अतः उसी के द्वारा आदि मनुष्यों को ज्ञान की प्राप्ति सम्भव है। हम दूसरों से संवाद करने के लिए आत्मा के द्वारा अपनी वाणी से अपनी बात का सम्प्रेषण करते हैं। इसका कारण दो व अधिक मनुष्यों का पृथक-पृथक स्थानों में होना होता है लेकिन यदि हमें स्वयं से बात करनी हो या चिन्तन-मनन करना हो तो हम अपनी आत्मा व मन में ही विचार करते हैं जिसमें भाषा का प्रयोग तो होता है परन्तु उसे मुंह से बोला नहीं जाता। ईश्वर सर्वव्यापक एवं सर्वान्तर्यामी होने के कारण हमारी व सभी प्राणियों की जीवात्माओं के भीतर भी विद्यमान है। अतः उसे हमसे संवाद व अपना ज्ञान देने के लिए बोल कर ज्ञान देने की आवश्यकता नहीं होती। वह अपनी बात हमें हमारी आत्मा में प्रेरणा द्वारा बता देता व स्थापित कर देता है। इसी प्रकार से सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर ने मनुष्यों को परस्पर कर्त्तव्य व अकर्त्तव्य तथा सृष्टिगत पदार्थों के नामों व संज्ञाओं से परिचित कराने के लिए वेदों का ज्ञान चार ऋषियों के माध्यम से दिया था। इसे विस्तार से जानने के लिए जिज्ञासुओं को ऋषि दयानन्दकृत सत्यार्थप्रकाश का अध्ययन करना चाहिये। वेदों की उत्पत्ति अर्थात् चार ऋषियों को वेदों का ज्ञान मिलने के बाद उन्होंने ब्रह्मा नाम के पांचवें ऋषि को चारों वेदों का ज्ञान देकर, उसके पश्चात इन सबने शेष स्त्री पुरुषों को उसका अध्ययन कराया जिससे सृष्टि की आदि व प्रथम सन्तति को ईश्वर प्रेरित वैदिक धर्म अर्थात् कर्तव्य व अकर्तव्यों सहित सभी विषयों का ज्ञान प्राप्त हो गया था। वेदों व इतिहास के मर्मज्ञ ऋषि दयानन्द ने तीन हजार से अधिक प्राचीन ग्रन्थों का अध्ययन कर निष्कर्ष निकाला कि सृष्टि के आरम्भ से महाभारत काल से कुछ काल पूर्व तक वैदिक शिक्षायें ही धर्म हुआ करती थी। उन्होंने अनुसंधान कर यह तथ्य भी प्रकट किया है कि वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। सत्य विद्याओं की पुस्तक व ग्रन्थ होने से वेदों के सम्मुख इतर मनुष्यकृत पुस्तकों का महत्व दूसरे स्थान पर होता है यदि वह वेदानुकूल हो। प्राचीन काल में बनायें गये ऋषियों द्वारा वेदों के व्याख्या, भाष्य आदि व व्याकरण ग्रन्थों का महत्व निर्विवाद रूप से होता है परन्तु उन सबका वेदों के अनुकूल होना अनिवार्य है। सृष्टि के आरम्भ में मनुष्यों की बुद्धि शुद्ध व पवित्र होने के कारण वेदों के सहायक व्याख्या व व्याकरण आदि ग्रन्थों की आवश्यकता नहीं थी परन्तु कालान्तर में बुद्धि की क्षमता में कमी आने के कारण वेदों के 6 अंग, 6 उपांग कहे जाने वाले ग्रन्थों का अध्ययन आवश्यक हो गया जिसमें मनु के उपदेशों सहित अनेक उपनिषद ग्रन्थ भी सम्मिलित हैं। वेदों के मुख्य चार विषय ज्ञान, कर्म, उपासना और विज्ञान हैं। हमें अपनी आत्मा, ईश्वर व इस सृष्टि का यथार्थ ज्ञान प्रिय व आवश्यक है उसी प्रकार से वेदों के ज्ञान के बिना मनुष्य को यथार्थ ज्ञान न मिलने से जीवन की यथार्थ उन्नति नहीं होती। ईश्वर, जीवात्मा, प्रकृति, सृष्टि, पुनर्जन्म, ईश्वरोपासना, यज्ञ, माता-पिता-आचार्य एवं विद्वानों के प्रति कर्तव्य एवं व्यवहार आदि अनेकानेक विषयों का ज्ञान वेदों से भली भांति होता है जिसका दिग्दर्शन महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ-प्रकाश सहित ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका आदि अपने अनेक ग्रन्थों में कराया है। वेदों का ज्ञान पूर्व एवं सत्य होने के कारण उनकी यथार्थ व्याख्या से इतर किसी अन्य मत व धर्म की पुस्तक की किसी मनुष्य को कोई आवश्यकता नहीं है। सृष्टि के आरम्भ से ही वेदों का अध्ययन कर धर्म सहित सभी विषयों को जाना जाता रहा है। इसमें कभी किसी को कोई कठिनाई नहीं आई। वेदों में सभी विद्यायें संक्षेप व बीज रूप में हैं जिनका अध्ययन कर इच्छित विषय का विस्तार व उन्नति की जा सकती है। इसके लिए ईश्वर ने मनुष्य को मानसिक, आत्मिक व बौद्धिक क्षमतायें प्रदान की हुई है। लगभग पांच हजार वर्ष पूर्व महाभारत के भीषण युद्ध के बाद वैदिक धर्म का यथार्थ स्वरूप विलुप्त हो गया था जिसे महर्षि दयानन्द ने अपने विद्या व अपूर्व पुरुषार्थ से देश व विश्व को सुलभ कराया। गायत्री मन्त्र भी वेदों का एक मन्त्र है और इसके समान व अन्य अनेक उपयोगी सहस्त्रों मन्त्र वेद में हैं। वेदों के मन्त्रों का संस्कृत, हिन्दी व अंग्रेजी भाषाओं में महर्षि दयानन्द और अनेक आर्य विद्वानों का भाष्य व अनुवाद भी सम्प्रति उपलब्ध है जिसे कोई भी मनुष्य पढ़कर वेद के गूढ़ रहस्यों को जान सकता है। अतः मनुष्य जीवन में सुख व शान्ति सहित उसकी लौकिक व पारलौकिक उन्नति अर्थात् निःश्रेयस व मोक्ष प्राप्ति में वेदों का सर्वोपरि योगदान है जिसे वेद व वैदिक साहित्य के अध्ययन से इतर किसी अन्य साधन से जाना व समझा नहीं जा सकता। वेदों के प्रभाव पर भी कुछ चर्चा कर लेते हैं। महाभारत काल व उसके बाद देश का पतन आरम्भ हो गया था। महाभारत युद्ध में जान व माल सहित हमारे अनेक विद्वानों के काल कवलित होने से देश की भारी क्षति हुई थी। इस कारण देश की शिक्षण व समाज व्यवस्था कुप्रभावित हुई जिससे अज्ञान उत्पन्न होकर देश व विश्व में अन्धकार छा गया। समय के साथ यह बढ़ता रहा और ऐसा समय आया कि जब वेदों के शब्दों के रहस्यों व गहन गम्भीर अर्थों के अनध्याय से विस्मृति के कारण उनके मिथ्या अर्थों को मानकर समाज में व्यवहार होने लगा। सबके अधिक विकार गोमेध, अश्वमेध, अजामेध आदि यज्ञों के रूप में हुआ जहां पूर्णरूपेण हिंसारहित यज्ञों में गाय, घोड़े, भेड़ व बकरी को मार कर आहुतियां दी जाने लगी। इसकी प्रतिक्रिया में नास्तिक बौद्ध व जैन मतों का आविर्भाव हुआ। दूसरी ओर वैदिक मत भी इसके अनुयायियों के अज्ञान व स्वार्थों के कारण अवैदिक व मिथ्या सिद्धान्तों का वाहक बन गया जिसे बाद में पौराणिक व अन्य अनेक नामों से जाना जाता है। यह क्रम चलता रहा और देश व विश्व में समय-समय पर नाना प्रकार के अविद्याजन्य मतों की संख्या में वृद्धि होती रही। इन सभी मतों में अधिकांश शिक्षायें व सिद्धान्त वेदों के ही थे। केवल कुछ बातें व मान्यतायें अज्ञानता, अल्पज्ञता व स्वार्थ आदि के कारण वेद विरुद्ध स्वीकार कर ली गई। आज भी

(शेष पृष्ठ 7 पर)

वाणी का महत्व

-ले० नरेन्द्र आहूजा 'विवेक' 602 जी एच 53 सैक्टर 20, पंचकूला

वाणी का मनुष्य के जीवन में बहुत महत्व है। वाणी से बोली गई भाषा वक्ता के भावों की संवाहक होती है। वाणी द्वारा ही मनुष्य अपने भावों को दूसरे के मन में संप्रेषित कर सकता है। वाणी मनुष्य के चरित्र को दर्शाती है और मनोभावों का प्रकटीकरण करती है। वाणी से ही सुख और दुख उपजते हैं और मनुष्य की शांति और अशांति का सीधा संबंध मनुष्य की वाणी से होता है। तीरों तलवारों से लगे घाव समय के साथ भर जाते हैं लेकिन कटु वाणी से मन पर लगा घाव कभी नहीं भरता। इसका इतिहास प्रसिद्ध उदाहरण द्रोपदी का व्यंग्य ''अंधों के पुत्र अंधे'' जिससे महाभारत के युद्ध की नींव पड़ गई थी।

इसीलिए कहा जाता है कि मनुष्य को सदा तोल मोल कर बोलना चाहिए। ऋग्वेद में मंत्र आया है ''सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमकृत।'' अर्थात् जैसे चलनी में छान कर सत्तु को साफ किया जाता है उसी प्रकार बुद्धिमान लोग ज्ञानरूपी चलनी द्वारा वाणी को शुद्ध करके प्रयोग करते हैं और हितैषी विद्वान लोग हित की बातों को समझते हैं। उनकी वाणी में कल्याणप्रदा लक्ष्मी रहती है। इस वेद मंत्र में दो सामान्य सी घर की दैनिक प्रयोग की वस्तुओं सत्तु और चलनी की उपमा दी गई है। जिस प्रकार सत्तु को छलनी से छान कर तिनकें रेत आदि इतर पदार्थों को निकाल दिया जाता है या फिर ना पचने के योग्य कर्कश अंश छान लिए जाते हैं और शुद्ध सत्तु जो कि रेत, कंकर आदि इतर पदार्थों तथा मोटे अपाच्य पदार्थों से मुक्त हो जाता है वह स्वास्थ्य के लिए अत्यंत लाभकारी होता है। इस उपमा का प्रयोग वाणी और बुद्धि जैसे सूक्ष्म उपमेयों के लिए किया गया है। वेदमंत्र बड़े स्पष्ट रूप से इस उपमा के माध्यम से संदेश देता है कि मनुष्य को वाणी का प्रयोग बड़ी सावधानी से बुद्धि की चलनी से छानकर करना चाहिए और कभी भी असत्य चाहे वह प्रिय ही क्यों न हो जैसे इतर पदार्थों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। साथ ही साथ अप्रिय कटु सत्य का प्रयोग करने से बचना चाहिए। जैसे काने को काना कहना चाहे सत्य ही क्यों ना हो लड़ाई मोल लेने के समान है। कठोर शब्दों में कहे गए हितकर वाक्यों को सुनकर भी मनुष्य रूष्ट हो जाता है। कटु वचन क्रोध की अग्नि में ईंधन के समान उसे भड़का देते हैं जबकि विनम्र कोमल सत्य क्रोध की अग्नि पर शीतल जल के छींटे के समान होता है। इसीलिए कहा गया है ''सत्यम् ब्रूयात् प्रियम् ब्रूयात्'' अर्थात् सत्य बोलें प्रिय बोलें किन्तु अप्रिय सत्य या प्रिय असत्य ना बोलें। किसी के साथ व्यर्थ वैर और शुष्क विवाद ना करें। प्रिय होने पर भी जो वचन हितकर ना हो उसे नहीं कहना चाहिए और हितकर बात चाहे सुनने में अप्रिय ही क्यों ना लगे अवश्य कह देनी चाहिए क्योंकि मलेरिया ज्वर की अवस्था में कुनीन की कड़वी दवा भी मीठी औषधि के समान होती है।

वाणी का संयम मनुष्य के जीवन का आभूषण है। व्यर्थ व अनुपयोगी बोलना भी अनुचित होता है। जो व्यक्ति उपयोगी और अनुपयोगी का अंतर समझ लेते हैं वह कभी व्यर्थ शब्द व्यक्त नहीं करते। महात्मा विदुर ने कहा कि कम बोलने से मन की शक्ति बढ़ती है। प्रश्न का समय पर उपयुक्त उत्तर देना आनंद प्रदान करता है और उचित समय पर कही गई बात ज्यादा वजन रखती है। सही कहा गया है कि पशु ना बोलने के कारण और मनुष्य व्यर्थ कटु बोलने के कारण कष्ट उठाते हैं। जो व्यक्ति अपने मुख और जिह्वा पर संयम रखता है वह अपनी आत्मा को संतापों से बचाता है। महात्मा गांधी ने कहा कि मौन से अच्छा भाषण दूसरा कोई नहीं फिर भी यदि बोलना पड़े तो जहां एक शब्द से काम चलता हो वहां दूसरा शब्द नहीं बोलना चाहिए। मौन का महत्व तो उस अज्ञानी से पूछो जो ज्ञानियों की सभा में जा बैठा हो। जो इंसान तोल मोल कर नहीं बोलता उसे अक्सर कटु वचन सुनने पड़ते हैं। प्रत्येक स्थान और समय बोलने के योग्य नहीं होता कभी कभी मौन वाणी से अधिक प्रभावी सिद्ध होता है। इसीलिए कहा जाता है कि धैर्यपूर्वक सबकी बात ध्यान से सुनों परन्तु अपनी सलाह बिना मांगे मत दो और केवल थोड़े ही उन मनुष्यों को दो जो धैर्यपूर्वक सुनकर उसके अनुसार कार्य करें।

मनुष्य की वाणी का मनुष्य जीवन में अत्यंत महत्व है। वाणी भाषा के माध्यम से भावों की संवाहक बनती है। मनुष्य को सदा बुद्धि की चलनी से छान कर प्रिय सत्य ही बोलना चाहिए। अप्रिय सत्य या प्रिय असत्य कभी ना बोलें। शब्द का महत्व समझें और व्यर्थ शब्दों का प्रयोग कदापि ना करें।

पृष्ठ 4 का शेष-जीवन मुक्त बनें

उसकी आज्ञा न मानना की मृत्यु आदि दु:ख का हेतु है। ईश्वर की आज्ञा पालन करना श्रेष्ठ कर्म करना है। जब मनुष्य जगत में श्रेष्ठ कर्म करता है, कर्तव्यपालन निष्ठा से करता है, परोपकार करता है या कोई पुण्य कर्म करता है तो उसे अत्यंत सुख और आनंद प्राप्त होता है। ऋषियों की मान्यता है कि यही विशेष सुख स्वर्ग है।

सत्कर्म, परोपकार और पुण्य कर्मों के फलस्वरूप प्राप्त आनंद के साथ-साथ मनुष्य को लोक व्यवहार ऐसा रखना चाहिए जिससे मन प्रसन्न रहे और दूसरों को भी सुख पहुँचे। इस विषय में कुछ सूक्तियां मार्ग दर्शन करती हैं जो इस प्रकार हैं-

1. मीठी वाणी बोलिए मन का आपा खोए
औरन को शीतल करे आप हु शीतल होय।

2. सांच बराबर तप नहीं झूठ बराबर पाप
जाके हृदय सांच है ताके हृदय आप।

3. दया धर्म का मूल है पाप मूल अभिमान
तुलसी दया न छोड़िए जब लग घट में प्राण।

4. रहिमन देख बडेन का लघु न दीजिए डार
जहां काम आवे सुई कहा करे तलवार।

5. गोधन गजधन बाजधन रत्नधन खान
जब आवे संतोष धन सब धन धूरि समान।

योग दर्शन के अनुसार समाज में जो मनुष्य सुखी और सुख साधन संपन्न है उनसे मित्रता का व्यवहार करो, इससे ईर्ष्या द्वेष समाप्त होता है। दु:खी और साधन हीन मनुष्यों के साथ दया का व्यवहार करो, इससे परोपकार की भावना उत्पन्न होती है। जो विद्वान धार्मिक है उनके साथ हर्ष की भावना रखो, उनका आदर करो तथा उनसे ज्ञान प्राप्त करो, जो अधर्माचरण व बुरे स्वभाव व कर्म वाले व्यक्ति हैं उनसे न दोस्ती रखें, न ही दुश्मनी बल्कि उनके प्रति उपेक्षा का भाव रखें। अर्थात् सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिए।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थ प्रकाश नवम समुल्लास में लिखा है-''पवित्र कर्म, पवित्रोपासना तथा पवित्र ज्ञान से मुक्ति संभव है। जो मुक्ति चाहता है वह जीवनमुक्त कहलाता है। जो कोई दु:ख को छुड़ाना और सुख को प्राप्त करना चाहे वह अधर्म को छोड़ धर्म अवश्य करे, क्योंकि दु:ख का पापाचरण और सुख का धर्माचरण मूल कारण है।

पवित्र कर्म विवेकख्याति से ही संभव है। मनुष्य की विवेकात्मक बुद्धि शुद्ध को शुद्ध और अशुद्ध को अशुद्ध ज्ञान का बोध कराती है तथा जड़ और चेतन में भेद का ज्ञान कराती है। विवेकी ही सुख को सुख और दु:ख को दु:ख जानता है। विवेकशील मनुष्य धर्माचरण और न्यायाचरण मन, वाणी और शरीर से करता है। वही ईश्वर स्तुति, प्रार्थना, उपासना, योगाभ्यास का शुद्ध ज्ञान प्राप्त कर नित्य कर्म में सतत लगा रहता है। शुद्ध संस्कारों को स्वाध्याय सत्संग से प्राप्त करता है और अशुद्ध संस्कारों को छोड़ने का प्रयास करता है। अपनी आत्मा के तुल्य प्राणिमात्र का कल्याण चाहता है। ऐसा व्यक्ति ही जीवन मुक्त कहलाता है और वही सभी बंधनों से छूट कर मोक्ष का अधिकारी बनता है। मनुष्य जीवन ही मोक्ष का सोपान है। सत्य कर्म करते हुए सत्पथ पर चलते हुए ही मोक्ष सोपान पर चढ़ने का अधिकारी होता है।

जीवनमुक्त के लिए यह आवश्यक नहीं कि वह बहुपठित या शिक्षित हो। यदि अशिक्षित व्यक्ति में भी धार्मिकता, कर्तव्य-निष्ठा, सत्याचरण, निर्भीकता, निरभिमानता है तो वह भी जीवनमुक्त हो सकता है। महर्षि दयानन्द ने एक मोची से कहा था-''तुम्हारी भी मुक्ति हो सकती है यदि तुम अपना कर्म पूरी मेहनत व ईमानदारी से करो और उचित दाम लो।'' एक रूई धुनने वाले को उन्होंने बताया कि यदि वह ईमानदारी से जितनी रूई उसने ली है उतनी धुन कर वापस दे और ठीक पैसे ले तो उसकी मुक्ति हो सकती है। जोधपुर के महाराजा प्रतापसिंह को बताया कि यदि प्रजापालन न्याय से किया जाए तो राजा का मोक्ष हो सकता है। (न्याय अर्थात् पक्षपात रहित सत्याचरण करना) सत्य, निष्ठा और कर्तव्य पालन ही धर्म है। इसी के आचरण से मनुष्य जीवमुक्त हो सकता है।

हमारा प्रयास इसी जीवन में मुक्त होने का होना चाहिए। उसी से स्वर्ग का सुख मिलेगा और शाश्वत आनन्द की प्राप्ति के लिए मुक्ति का द्वार निश्चय ही खुल जाएगा।

पृष्ठ 2 का शेष-सच्चा सुख प्राप्त करने के साधन

निग्रह-इन्द्रियों को धर्म में लगाना 7. आलस्य, प्रमाद सब का त्याग 8. विद्या-पृथ्वी से परमेश्वर तक सब पदार्थों का ज्ञान प्राप्त कर उपकार लेना 9. अक्रोध, शांत पक्षपात रहित रहना 10. सत्य-मन, वाणी, कर्म से जो जैसा हो; वैसा समझना।

(छ) सुखी जीवन के लिए मूढ़ व्यक्तियों को पहचानना और उनका त्यागना आवश्यक है।

मूढ़ व्यक्ति के लक्षण-

1. जिसने कोई शास्त्र नहीं पढ़ा एवं सुना 2. दरिद्र होकर बड़ी-बड़ी कामनाएं 3. बिना बुलाए घर में प्रवेश 4. उच्च आसन पर बिना कहे बैठना 5. सभा में बिना बुलाए पहुंचना 6. विश्वास के आयोग्य 7. असभ्य 8. कलह बढ़ाने वाला-इन सबसे सदा बचकर रहना पड़ेगा नहीं तो जीवन दुखदायी बन जाएगा।

(ज) सत्य को सही पहचान पालन करने से ही सुख मिलता है।

सत्य की पहचान के लिए परीक्षण विधि-

1. ईश्वर के गुण कर्म स्वभाव अनुकूल

2. सृष्टिक्रम के अनुकूल 3. आप्त विद्वानों के उपदेश के अनुकूल 4. आत्मा की पवित्रता के अनुकूल आदि 5. प्रत्यक्ष जो आँख से सामने दिखे वैसा, जैसे-सूर्य, आकाश, पृथ्वी आदि 6. अनुमान-जैसे बादल देखकर वर्षा, धुआं देखकर अग्नि का अनुमान होना 7. वेद आदि धार्मिक ग्रन्थों में बताये ज्ञान पर आधारित।

(झ) सुखी रहने के लिए कुछ अन्य आवश्यक जानने योग्य बातें।

1. माता पिता के धार्मिक विदुषी होना आवश्यक, सत्संग में संतान की रुचि बनाए। जन्मपत्री, भूत-प्रेत, ग्रह आदि भ्रांतिजाल से संतान को बचाकर रखो। कोई ग्रह क्रोधित नहीं होता है, सब को अपने कर्मानुसार फल भोगना होता है। किसी प्रकार तांत्रिक पूजा से कर्म फल से नहीं बच सकते। संतान को उत्तम शिक्षा दो, नहीं तो सब धन और शांति समाप्त हो जाएगी।

2. आरोग्यता सबसे बड़ा सुख है। इसके लिए नियमित आहार, व्यायाम, प्राणायाम एवं नियमित जीवन आवश्यक है। दुःख से कभी नहीं घबराना चाहिए।

3. गायत्री तथा वेद मंत्रो का अर्थ सहित मनन जाप एवं श्रवण। ब्रह्मयज्ञ देवयज्ञ आदि का महत्व एवं अर्थ समझकर जीवन में पालन करना।

4. सदा मद्य, मांस एवं वैरबुद्धि का त्याग करना, जीवन में नम्रता रखना, जीवन में कोई ऐसा कार्य नहीं करना जिससे आप भयभीत हो। सदा अभय रहो।

यह जीवन में आवश्यक है कि गृहस्थाश्रम में आवश्यकतानुसार धन अर्जित करें ताकि बाकी तीनों आश्रमों में जीवन व्यवस्थित रहे। दूसरे धन की लालसा से कभी सुख नहीं मिलता।

उपरोक्त बातों के पालन से सच्चा सुख जीवन पर्यंत मिलता है तथा जीवन मोक्ष की प्राप्ति का साधन बनता है।

आर्य समाज मन्दिर संगरूर में वेद प्रचार सप्ताह

आर्य समाज संगरूर (पंजाब) में गत वर्षों की भाँति इस वर्ष भी वेद प्रचार सप्ताह 3 नवम्बर से 6 नवम्बर 2016 तक धूमधाम से मनाया जा रहा है। इस कार्यक्रम में यज्ञ के ब्रह्मा श्रद्धेय महात्मा चैतन्यमुनि जी एवं माता सत्यप्रिया जी विशेष तौर पर पधार रहे हैं। आप सभी से निवेदन है कि सभी उत्सव में भाग लेकर इसकी शोभा को बढ़ाएं। कार्यक्रम का समय सुबह 6:30 से 9:00 बजे तक तथा सायंकाल 8:30 से 10:30 बजे रात्रि तक रहेगा। रविवार का समय प्रातः 8:30 से 12:00 बजे तक रहेगा।

मन्त्री आर्य समाज

पृष्ठ 5 का शेष-'वेदों का सावैभौमिक महत्व...

यदि देखों तो वेद इस इतर मतों में सतर से अस्सी प्रतिशत व इससे कुछ अधिक मान्यतायें वेदों की मूल भूत मान्यतायें ही किसी न किसी रूप में विद्यमान हैं। शेष बातें उनके मताचार्यों व प्रचारकों की अपनी-अपनी हैं जो अपने हित-अहित को ध्यान में रखकर सुविधा व अनेकानेक लाभों की दृष्टि से प्रचारित की जाती हैं। इस बातों के कारण मनुष्य ''वसुधैव कुटुम्बकम् की उच्च व पावन भावना से दूर होकर परस्पर एक दूसरे के विरोधी वा शत्रु बन गये हैं। इसे इस रूप में भी देख सकते है कि स्नात्कोत्तर कक्षा में अध्ययनरत वा शिक्षित युवाओं को किसी धर्म एक विषय पर निबन्ध लिखने को दिया जाये तो अधिकांश को तो 33 से 50 प्रतिशत अंक ही प्राप्त होंगे और शेष कुछ लोगों को 50 से 80 व अधिक से अधिक 90 प्रतिशत अंकों के बीच अंक प्राप्त होंगे। यह उदाहरण बतलाता है कि सभी मनुष्यों का ज्ञान का स्तर समान नहीं होता। अधिक लोग कम ज्ञानी होते हैं और बहुत कम लोग कुछ-कुछ ज्ञानी होते हैं जिनका स्तर भी 50 से 80 या 90 प्रतिशत तक ही पहुंच पाता है। यही स्थिति मध्यकाल में हमें धर्म व मत-संस्थापकों की भी कुछ-कुछ लगती है। यह मनुष्य की जीवात्मा की अल्पज्ञता के कारण होता है। कोई मनुष्य कितना भी ज्ञान प्राप्त कर ले परन्तु वह सदैव अल्पज्ञ ही रहता है और उसके ज्ञान में कुछ न कुछ न्यूनता रहती ही है। यही स्थिति हमारे पूर्व सभी मताचार्यों की रही है व वर्तमान मताचार्यो की भी है। वेदेतर मतों की अधिकांश बातें सत्य होने पर भी उनकी अनेक व बहुत सी बातें सत्य के विपरीत असत्य व सत्यासत्य मिश्रित हैं।

वेदों का महत्व इस कारण है कि महाभारत काल तक संसार में वेद वा वैदिक धर्म ही एकमात्र धर्म था जो 1.96 अरब वर्षों से अधिक समय तक अपने शुद्ध रूप में प्रचलित रहा। इस अवधि में वैदिक संस्कृति ही विश्व में प्रचलित थी। वेदों में कहा भी गया है कि 'सा संस्कृति प्रथमा विश्ववारा' अर्थात् वैदिक संस्कृति ही विश्व की प्रथम संस्कृति है। मनुस्मृति ने प्राचीन काल में घोषणा की कि 'वेदऽखिलो धर्ममूलम्' अर्थात् वेद व इसका ज्ञान ही अखित वा समस्त विश्व में धर्म का मूल है। सत्य बोलना चाहिये असत्य नहीं, धर्म पर चलना चाहिये अधर्म पर नहीं, माता-पिता-आचार्य व विद्वानों का सम्मान, सेवा व उनके प्रति प्रियाचारण करना चाहिये। अविद्या का नाश और विद्या, ज्ञान व श्रेष्ठ बातों की उन्नति और प्रचार करना चाहिये। ऐसी अनेक बातें हैं जिन्हें सभी मत व धर्म मानते हैं और यह वेदों से ही प्रचारित होकर अन्य मत-मतान्तरों में गईं हैं। ऋषि दयानन्द ने सत्य ही कहा है कि मत-मतान्तरों में जो-जो सत्य है वह सब वेदों से वहां पहुंचा है और उनमें जो असत्य व मिथ्याचार है वह सब उनका व उनके आचार्यों का अपना है। पं. चमूपति जी और प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु जी ने वेदों के इस्लाम पर प्रभाव पर पुस्तक लिखी है। अब वह ईसाई मत पर वेदों के प्रभाव पर भी पुस्तक लिखना आरम्भ कर रहे हैं। पं. गंगा प्रसाद, मुख्य न्यायाधीश, टिहरी राज्य की पुस्तक 'धर्म का आदि स्त्रोत' भी इस विषय की महत्वपूर्ण पुस्तक है जिसमें सभी मतों पर वैदिक मत के प्रभाव पर प्रकाश डाला गया है। सभी मतों पर वैदिक मत का प्रभाव सिद्ध होता है। अतः सभी मत-मतान्तर वेदों से प्रभावित हैं अर्थात् उनमें वेदों की शिक्षायें, मान्यतायें व सिद्धान्त शब्द व वाक्यभेद से विद्यमान हैं। हमने यह कुछ संक्षेप में वर्णन किया है।

वेद विश्व साहित्य में सर्वाधिक महिमाशाली ज्ञान व ग्रन्थ हैं जिसकी तुलना में संसार का कोई ग्रन्थ नहीं है। वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक होने के साथ सभी विषयों का यथार्थ ज्ञान वेदों से होता है। वेदों की महिमा अपरम्पार है। वेदों से सभी मत-मतान्तरों के ग्रन्थ प्रभावित हैं। इसे जानने के लिए ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों व विचारों का अध्ययन उपयोगी होगा।

इसी के साथ हम इस लेख को विराम देते हैं। इति शम्।

वेदवाणी
वह सर्वहितकारी है

इन्द्रश्च मृळयाति नो न नः पश्चाद्घं नशत्।
भद्रं भवाति नः पुरः॥

-ऋ० २।४१।११

ऋषिः-गृत्समदः॥ देवता-इन्द्रः॥ छन्दः-गायत्री॥

***विनय**-भाइयो ! इसमें सन्देह नहीं है कि इन्द्र भगवान् तो हमें सदा सुख ही दे रहे हैं, निरन्तर हमारा कल्याण ही कर रहे हैं, फिर भी जो असुख हमारे सामने आता है, हमें दुःख देखना पड़ता है, उसका कारण यह है कि हमने पाप को अपने पीछे लगा रखा है और पाप का परिणाम दुःख होना अटल है, अनिवार्य है। यदि हमारे पीछे पाप न लगा हो तो हमारे सामने भद्र-ही-भद्र आता जाए। जब हम कोई पाप करते हैं तो समझते हैं कि वह वहीं समाप्त हो गया। हम समझते हैं कि दो घण्टे पहले किया हुआ हमारा पाप दो घण्टे पूर्व उसके कर्म के साथ ही समाप्त हो चुका, अब उसका हमसे कुछ सम्बन्ध नहीं। इस प्रकार हम पाप करके आगे चलते जाते हैं और चाहते तथा आशा करते हैं कि आगे-आगे हमारे लिए भद्र-ही-भद्र आता जाए, परन्तु हमें मालूम रहना चाहिए कि हमारा किया हुआ पाप चाहे हमारी आँखों के सामने नहीं आ खड़ा होता हो, परन्तु वह नष्ट भी नहीं होता। वह तो हमारे पीछे लग जाता है और तब तक हमारा पीछा नहीं छोड़ता जब तक वह हमारे आगे अभद्र, अकल्याण व दुःख के रूप में आकर हमें फल नहीं भुगा लेता, अतः याद रखिए कि हमें न दिखाई देता हुआ हमारे पीछे रहता हुआ ही हमारा पाप एक दिन हमारे आगे अभद्र व क्लेश के रूप में आता है और अवश्य आता है, जैसे हमारा प्रत्येक पुण्य भी पीछे रहता हुआ, दिखाई न देता हुआ एक दिन हमारे आगे भद्र के रूप में आता है। यह हमारी कितनी मूर्खतापूर्ण इच्छा है कि हम चाहते हैं हमारा सदा भला ही होवे, हमारे सामने सदा सुख, स्वास्थ्य, समृद्धि आदि ही आते जाएँ, परन्तु साथ ही हम पाप करना भी नहीं छोड़ना चाहते ! यह कैसे हो सकता है ? हमारे पीछे तो हमारा नाश करता हुआ, हमारा पाप चल रहा होता है और हम मूर्खतापूर्ण आशा में यह प्रतीक्षा करते होते हैं कि हमारे सामने सुख आता होगा। यह असम्भव है, अतः आओ, आज से हम कम-से-कम आगे के लिए पाप करना तो सर्वथा त्याग दें। यदि हम विशेष पुण्य नहीं कर सकते तो कम-से-कम इतना तो सङ्कल्प कर लें कि हम अब से एक भी पाप अपने से न होने देंगे। इतना करने से भी इन्द्र भगवान् की दया से हमारे सुदिन शीघ्र ही आ जाएँगे, पाप का पीछा छूट जाने से भद्र के लिए मार्ग साफ़ हो जाएगा, पर यदि हम इतना भी न कर सकें तब तो इन्द्रदेव की सुख व कल्याण की वर्षा में रहते हुए भी हमारे भाग्य में तो दुःख-ही-दुःख रहेगा।*

आर्य समाज मन्दिर में संस्कृत शिक्षण केन्द्र

राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान नई दिल्ली भारत सरकार की ओर से संस्कृतभाषा के प्रचार एवं प्रसार के लिए आर्य समाज मन्दिर फरीदकोट में संस्कृत शिक्षण केन्द्र खोला गया। इसका उद्घाटन नगर कौंसिल की प्रधान उमा ग्रोवर ने किया। संस्कृत शिक्षण केन्द्र के निर्देशक तथा कार्यक्रम के विशेषातिथि डॉ. निर्मल कौशिक ने कहा कि वेद ज्ञान के भण्ड़ार हैं। संस्कृत सभी भाषाओं की जननी है और आज हम अन्य भाषाओं को तो सीख रहे हैं लेकिन जो भाषा अपने जीवन व संस्कृति का आधार है उसे भुलाते जा रहे हैं उन्होंने कहा कि हम दैनिक जीवन में कितने ही शब्द संस्कृत के बोलते व सुनते हैं लेकिन हमें इस भाषा का ज्ञान न होने के कारण उसका ज्ञान नहीं हो पाता। उल्लेखनीय है कि डॉ. निर्मल कौशिक पिछले 40 वर्षों से संस्कृत भाषा के प्रचार व प्रसार में लगे हुए हैं। फरीदकोट में कर्मशीला संस्कृत विकास मंच की स्थापना कर उन्होंने संस्कृत भाषा को जन-जन तक पहुंचाने का महत्वपूर्ण कार्य किया है। इस समागम में के. के. मरवाहा गर्ल्ज कॉलेज के प्रिंसिपल, राजीव साहनी, सुरेन्द्र गेरा प्रधान बजरंग दल, सुरेन्द्र शर्मा, पंडित तीर्थ राम वर्मा, एसके गुप्ता, पंडित रमेश पराशर, आर्य समाज के प्रधान कपिल सहूजा, मन्त्री प्रमोद कुमार गोयल, कोषाध्यक्ष डॉ. देवराज, आर्य समाज कोटकपूरा के प्रधान प्रवीन चावला, बनारसी दास, ओम प्रकाश छाबड़ा आदि उपस्थित थे। मंच संचालन पं. कमलेश कुमार शास्त्री जी ने किया।

मन्त्री आर्य समाज मन्दिर फरीदकोट

श्री प्रेम भारद्वाज महामन्त्री, सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक द्वारा गायत्री प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय, गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ। **E-mail: apspunjab2010@gmail.com**